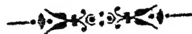
'पद्म-पुस्तक माला' का प्रथम पुष्प,

पद्म-प्रमोद।



लेखक—

आशुकवि पं० पद्मधर अवस्थी 'पद्म'



पुस्तक मिलनेका पता—

व्यवस्थापक—

पद्म-पुस्तकालय

बलदेवनगर सीतापुर।

प्रथम संस्करण १०००] सम्वत् १९८२ [मूल्य ।)

प्रकाशक—
पद्मधर अवस्थी 'पद्म'
अध्यक्ष
पद्म-पुस्तकालय
बलदेवनगर, सीतापुर ।



मुद्रक—
रामकुमार भुवालका
'हनुमान प्रेस'
३, माधव सेठ लेन,
कलकत्ता ।

✤ श्रीः ✤

परिचय

—×—

सुरम्य सीतापुर जिलेके बलदेवनगर-निवासी परलोक-वासी विप्र-वंशावतंश, व्रजभाषानुरागी विख्यात बलदेव कविके पुत्र पण्डित पद्मधर अवस्थी अवस्थामें अल्पवयस्क होनेपर भी कविकृतिमें कुशल हैं। आपका पद्यमय "पद्म-प्रमोद" पढ़कर प्रवीण पाठक प्रसन्न होंगे इसमें सन्देह नहीं। इसमें राष्ट्रीयता और जातीयता जगानेके लिये समयानुकूल, सुन्दर, सच्चे सन्देश सुचारुतासे सन्निवेशित हैं। व्रजभाषाकी रचना वास्तवमें बड़ाईके योग्य है। पद्मजीके पद्योंसे काव्य-कुञ्ज कूजित हुआ करे-बस यही वांछनीय है।

कलकत्ता
आश्विन कृष्ण ३
सं० १९८२

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी।

धन्यवाद



प्रस्तुत पुस्तकके सम्बन्धमें मुझे कुछ विशेष नहीं कहना है, इसमें इधर ४-५ वर्षोंके भीतर सामयिक पत्रोंमें निकली हुई मेरी कविताओंमेंसे कुछ कविताओंका संग्रह है। क्रमानुसार इसके दो खण्ड कर दिये गये हैं। नीति-खण्ड और प्रेम-खण्ड। नीति-खण्डमें राष्ट्रीय, सामाजिक एवं हिन्दू-संगठन सम्बन्धी कवितायें और प्रेम-खण्डमें प्रेम-सम्बन्धी भावोंका निदर्शन है। परिशिष्टमें प्रेम-पचीसी शीर्षकसे २५ सवैया छन्द खड़ी बोलीमें लिखे गये हैं। कुछ कविताओंको छोड़कर अधिकांश कवितायें खड़ी बोली की हैं।

इस पुस्तकके प्रकाशनमें मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान करनेवाले श्रीमान् बाबू गोकुलचन्दजी और श्रीमान् बाबू राधा-कृष्णजी नेवटियाने जो उदारता दिखलाई है उसके लिये मैं उक्त दोनों महानुभावोंका हृदयसे कृतज्ञ हूं।

इस छोटीसी पुस्तकको पढ़कर प्रेमी पाठकोंको यदि कुछ भी प्रसन्नता प्राप्त हुई तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

कलकत्ता
७—६—१९२५

पद्मधर अवस्थी "पद्म"

श्रीगणेशाय नमः ।

पद्म-प्रमोद

मङ्गलाचरण

हमारे कृष्ण

कवित्त ।

सिद्धि-सुख-दायक हैं, गीता-ज्ञान-दाता दिव्य, त्राता विश्वके हैं राधिकाके प्राणप्यारे कृष्ण। सांकरेमें लेते सुधि भक्त आश्रितोंकी सदा, भक्त उनके हैं और भक्तोंके सहारे कृष्ण। रूप उजियारे रखवारे जगके हैं 'पद्म' प्यारे यशुदाके न्यारे नन्दके दुलारे कृष्ण। षोडश कलासे पूर्ण भूमिभार धारे प्रभु, परम सहायक सदैव हों हमारे कृष्ण ॥

दासनके शिरपै सब ठौर धनीकर कञ्जनको धरते रहैं। दीन दयालु सदा सुखदायक दीननके दुखको दरते रहैं ॥ संपति सिद्धि सकेलि महा बहु भांतिसे भौननमें भरते रहैं। लालित पालितके प्रियपद्मको राधिका कृष्ण कृपा करते रहैं ॥

नीति-खण्ड

स्वराज हो

दुःख हो न दम्भ हो न द्रोह हो न दीनता हो,
द्वेष हो न, आपसमें दिलमें दराज हो।
भय हो न भेद हो न भ्रान्ति हो न भीरुता हो,
भव्य भाव भाषा वेश भूषित समाज हो।
विद्या हो विवेक हो विचार हो विशेषता हो।
विशद विधान अनुकूल सुख-साज हो।
शान्ति हो सुशीलता हो सत्यता हो साहस हो,
समता स्वशासन स्वदेशी हो स्वराज हो।

भारतका लक्ष्य प्राप्त करना स्वराज्य है।

धर्मसे विरत न हो वीरो! करो देश-हित, परवा नहीं है कि विरोधि ही साम्राज्य है। ईर्षा द्वेष द्रोह करो दूर दिलसे सकल, आलस अविद्या महा मोहतम त्याज्य है॥ गौरव बढ़ाना दरशाना है अतीत गुण एकमें मिलाना मुख्य राष्ट्र जो विभाज्य है। व्याप्त करना है विश्वमें विजय घोष पूर्ण, भारतका लक्ष्य प्राप्त करना स्वराज्य है।

बने रहें

कायर कहावें नहीं पावें पूर्व अधिकार, राष्ट्रका अतीत गुण गौरव गने रहें। धार्मिक कलहका विरोध करें अन्ततक सामाजिक शान्तिके सनेहसे सने रहैं। सुखद स्वतन्त्रताके प्राप्त करनेके

लिये शूर साहसी हों सीने सामने तने रहैं। आत्मत्याग प्रेमके प्रभावसे प्रकाशमान भारतीय वीर विश्वविजयी बने रहैं।

जीवन अधम है।

पेट भरता जो डरता है विघ्न बाधाओंसे, परता कुपंथमें न करता जो श्रम है। हरता समाजकी जो पीर नहीं धीर बन, जिसका अनिश्चित विचित्र कार्य्यक्रम है॥ जिसके हृदयमें नहीं भावना स्वतन्त्रताकी भूतलपै भार बना धारे भ्रान्ति भ्रम है। तन, मन, धन अरपन न स्वदेशहित, जिसने किया है वह जीवन अधम है॥

कायर कहाते क्यों ?

साधन न ढूंढ़ा उत्कर्षका विमर्ष त्याग। बने असमर्थ व्यर्थ समय बिताते क्यों ? संपतिकी लूट होती कूट नीतिकी कृपासे, धारे भेदभाव फूट हीका फल पाते क्यों ? हो रही व्यवस्था क्या स्वदेशकी समाजकी है हीनावस्थामें पड़े न जरा शरमाते क्यों ? स्वार्थपरतामें सन तन निज बन्धुओंसे बन असहाय व्यर्थ जीवन बिताते क्यों ?

मिल जुल करें सदा राष्ट्रके सकल कार्य्य बिलकुल होवै न विरोध भाई भाईमें। प्रेम प्रगटावैं हाथ दुःखमें बटावैं सब आवैं काम सबके समय दुखदाईमें। शक्ति प्राप्त होगी तभी साहससे इष्ट सिद्धि आगे बढ़नेमें वीरताई दृढ़ताईमें। दासतासे देशका उबार करनेके लिये जीवनोत्सर्ग हो समाजकी भलाईमें

हिम्मत न हारिये।

कीजिये समाज उपकार नव जाग्रतिसे दृढ़ साहसी हो निज जीवन सुधारिये। बनिये कठोर नहीं दीन पतितोंके प्रति होकर सदय प्रेम-भावसे निहारिये॥ संगठन कर शक्ति अनिवार्य्य कार्य एक उचित यही है आर्य्य जातिको उबारिये। धारिये उदार धर्म कर्म्म वीरके समान कर्मक्षेत्रमें कदापि हिम्मत न हारिये॥

जोश जातिमें जगाइये।

हीन न समझिये मलीन हो रहे कृषक, दीन दुखियोंके प्रति प्रेम प्रगटाइये। साधना सफल हो समुन्नतिकी आशा, यदि अन्त्यजोंमें आत्मअनुराग उमगाइये। सामाजिक क्रान्तिहीसे वास्तविक शान्ति होगी, निर्दय अनय भय भ्रान्तिको भगाइये। पाओ तोष त्यागो रोष दोष दो न दूसरोंको, होश अब भी हो जोश जातिमें जगाइये।

हिन्दू-संगठन

पाकर प्रकाश ज्ञान लाकर समय शुभ गौरव बढ़ाकर विशेष वीर बनके। जीवन निबाहें सादा धारे मरजादा मान, आदी नहीं होवैं ज्यादा रहन-सहनके। प्रेम पहिचानें जो मनुष्यताका मूल रूप, होयंगे मनोरथ सफल सब मनके। नामी श्री प्रताप औ शिवाके अनुगामी पूरे, हामी हों हमेशा हम हिन्दू-संगठनके॥

हिन्दू-संगठित हों।

जाति-धर्म-प्रेमी बनैं दूरन्देश पद्मधर, दिव्य दुति धारें दम्भ द्वेषसे रहित हों। वरण व्यवस्थाके न विपरीत है कदापि, अन्त्यजोंको देवैं अधिकार जो उचित हों। राष्ट्रीय उन्नतिके बाधक बनें न, पूज्य पण्डितोंके धार्मिक विचार सर्व हित हों। रंग ढंग देखके समयका न हों अभंग हिन्दके प्रधान अंग हिन्दू संगठित हों॥

अछूत अपने ही हैं।

यद्यपि न आशा अंगरेज सरकारसे है, हाकिम हमारे रहे त्योरियां तने ही हैं। पाते दीन दुःख हैं बिताते दिन दासतामें, अन्त्यज अधम अभी पतित बने ही हैं॥ किन्तु नवयुगमें विचार यह सत्य सिद्ध, संभव नहीं है सब स्वार्थमें सने ही हैं, भ्रमको मिटाओ अपनाओ दरशाओ दया अवशि उठाओ ये अछूत अपने ही हैं॥

वीरता बढ़ाओ प्रगटावो पुरुषत्व बल, विषम विरोधियोंसे दूर भय होवेगा। अज्ञता अनय अविचार अनुदारता औ अस्पृश्यताका घोर पाप क्षय होवेगा। जातिकी समुन्नतिके कर्महीसे 'पद्मधर' बन्धन समाजका सनेहमय होवेगा। त्यागो मोह निद्रा जागो जातिको सुधारो वीर हिन्दू भाइयोंका शीघ्र अभ्युदय होवेगा॥

हिन्दू-संगठन ही स्वराज है।

मस्त हुये आलसमें ऐसे अस्तव्यस्त हम।
ध्यान नहीं देते त्रस्त हो रहा समाज है॥
दीन दुनियाकी दशा देखते न दूरन्देश।
द्रवित हो कुछ जातिका न किया काज है॥
रुख क्यों विचित्र धारे दुःख बहु भोगते हैं।
शान्तिका न लेश रहा सुखका न साज है॥
भारतकी वर्तमान विषम परिस्थितिमें,
हिन्दुओंको हिन्दू-संगठन ही स्वराज है॥

जीवन सफल हो।

भक्ति भाइयों हीकी भलाईमें हो पूर्ण,
अनुरक्ति धर्ममें हो शक्ति साहस प्रबल हो।
सकल कुरीतियोंको शीघ्र ही सुधारें तब,
सामाजिक विषम समस्या यह हल हो॥
मंगलमय कामना स्वदेश उपकारकी हो,
अमल कमल सम मानस विमल हो॥
कर्तव्य पालें औ बढ़ालें बाहु-बल हिन्दू,
जातिमें जगावैं ज्योति जीवन सफल हो॥

अतीत और वर्तमान।

था प्राचीनोत्कर्ष क्या। है अब भारत वर्ष क्या॥
पहिलेका गुण ज्ञान वह। ध्येय धर्मका ध्यान वह॥

शील सभ्यता शान वह। देश जाति अभिमान वह॥
सभी लुप्त हैं हो गये। रत्न गुप्त हैं हो गये॥
कैसे कैसे वीर थे। होते नहीं अधीर थे॥
गौरव ज्ञान गंभीर थे। धन्य धर्ममें धीर थे॥
पूर्ण परस्पर प्रीति थी। न्याय नियम प्रिय नीति थी॥
समयोचित व्यवहार था। शासनपर अधिकार था॥
दम्भ द्वेषसे दूर थे। सभी साहसी शूर थे॥
संपतिसे भरपूर थे। करते नहीं गरूर थे॥
हिन्दू-धर्म प्रधान था। भारत, हिन्दूस्थान था॥
अब न पूर्वसी बात है। चली खलोंको घात है॥
उच्छृङ्खल-अविचारसे। धर्मान्धताधिकारसे॥
करते विषम प्रहार हैं। कलह कपट आगार हैं॥
करके दुखी समाजको। हैं बिगाड़ते काजको॥
समझे नहीं स्वराजको। स्वतंत्रता-सुख-साजको॥
विभिन्नताके रूपमें। पड़े हुये भवकूपमें॥
नहीं निकलते हैं अभी। क्यों न संभलते हैं सभी॥
समय दशाको जानकर। ध्येय धर्मका ध्यान कर॥
जन्म भूमि गुण-गान कर। मुख्य एकता मान कर॥
करें देशका कार्य्य जो। हैं कहलाते आर्य्य जो॥
विजय-श्री मिल जायगी। हृदय-कली खिल जायगी॥
ऐसी अनुपम युक्ति हो। दास्य दशासे मुक्ति हो॥
सफल साधना हर्ष हो। उन्नत भारतवर्ष हो॥

जाननेवाले ।

छोड़ें विरोध दुराग्रहको,
धरमान्धताका हठ ठाननेवाले ।
पाप प्रमादसे दूर भले,
बुरे प्राणियोंको पहिचाननेवाले ।
कर्म्म करे शुभ उन्नतिके सदा,
धर्मके मर्मको माननेवाले ।
जीवन-ज्योति जगावैं स्वजातिमें,
जोशका जौहर जाननेवाले ॥

वर्तमान जातीय जीवन ।

निज जातिकी उन्नतिका अनुराग,
उरोंमें उमंग उछाह नहीं है ।
सदा अंग समाजके हैं हमको,
पर अन्त्यजोंकी परवाह नहीं है ।
न परस्पर प्रेम प्रधान है जीवन,
नैतिक नेम निबाह नहीं है ।
लुटें लाल तथा ललनायें अनेक,
हैं वज्र हृदय हुई दाह नहीं है ॥
किया कोई न काम समुन्नतिका ।
पुरुखोंका सुनाम डुबोते रहे ।

नहीं ध्यान रहा पराधीनताका,
सदियोंतक मोहमें सोते रहे ॥
जगके नहीं जाति सुधारी,
समाजमें हैं विष बीज ही बोते रहे।
समै खोते रहे भय भीत बने,
परिवर्तन विश्वमें होते रहे ॥
पड़ पाप-प्रमादमें भूले हुये,
हम हैं अबलौं चित चेते नहीं।
महामोहके सिन्धुमें साहस धैर्य्यसे,
नौका-समाजकी खेते नहीं।
हुये धर्मसे दूर; दुराग्रहसे,
दुखी मानवोंकी सुधि लेते नहीं।
अभिमान गुमानमें ध्यान कभी,
निज जाति दशापर देते नहीं।
बढ़ा आलसका अधिकार विकार।
विचार उदार भगा रहे हैं।
अनुदारताकी हद हो गई है।
नहीं जातिमें जोश जगा रहे हैं।
रंगते नहीं धर्मके प्रेमके रंगमें,
पापमें चित्त पगा रहे हैं।
भगते समयोचित साधनासे,
ठगते अपनेको ठगा रहे हैं।

गई टूट स्वजातिकी है जड़पै,
फल फूटके खाकर फूलते है।
मतवादके झंझटोंसे न हटे,
बद हो मद झोंकमें झूलते हैं॥
करते हैं कलंकित जातिका जीवन,
कायरता ही कबूलते हैं।
हुई भाइयोंकी न भलाई कभी,
भ्रम भेदके भावमें भूलते हैं।
परमारथका पथ पाया नहीं,
हम स्वारथमें सनते हो गये।
अपनाया नहीं दुखी बन्धुओंको,
क्यों अकारण यों तनते ही गये।
रहा धर्मके ह्रासका ध्यान न चित्तमें,
ठान बुरे ठनते ही गये।
बिगड़े दिल जातिकी उन्नतिके भी,
विरोधी बड़े बनते ही गये।

पतितोंके सुधारनेसे न कभी, लग जायगी देशमें छूत हमारे।
कर दें उसे दूर जो हैं सरपै—अनुदारताका चढ़ा भूत हमारे।
हृदयोंमें भरी हो स्वधर्मकी भावना भूषित शक्ति अकूत हमारे।
इन्हें त्याग न रङ्गमें भङ्ग करें हैं समाजके अङ्ग अछूत हमारे।

हिन्दू-जातिका महान उपकार करिये।

पतित अछूत पूत भारत हीके हैं प्राण
इन्हें अपनाइये अवश्य प्यार करिये।
स्तंभ बन गौरव समाजके सहायक हो
दम्भ भीरुताका पूर्ण प्रतिकार करिये।
कर्म्मकर उन्नतिके मर्म मान्य मानकर
रक्षा ध्रुव धर्मकी किसी प्रकार करिये।
लीजिये उबार कर्तव्य हो प्रधान यही।
हिन्दू-जातिका महान उपकार करिये॥

देशबन्धुदासके देहावसानपर

हो रहे हृदय हैं दुखित हिन्दवासियोंके
मानसका मुकुर अपूर्व रत्न प्यारा था।
हारा न विरोधियोंसे प्रजाका सहारा रहा।
विद्या बुद्धि ज्ञानमें महान नेता न्यारा था॥
जान था स्वदेशकी स्वराज्य-दलका प्रधान,
वीर राजनीतिक-गगनका सितारा था॥
टूट गया अङ्ग हाय राष्ट्र हो गया अपङ्ग।
देशबन्धुदास बंगकेसरी हमारा था॥

(आजमें प्रकाशित)

चितरञ्जन चले गये ।

प्रभु हैं सदय नहीं ऐसे असमय कैसे,
ईशकी विषम दुरनीतिसे दले गये ।
हो रहे हताश हैं स्वभाग्यहीन भारतीय
कुटिल कराल काल छलसे छले गये ।
देश-हित-कामनाका ध्यान है महान,
पर हिम्मत न होती हाय हौसले मले गये ॥
बन्धुवोंको उन्नतिकी ओर अग्रसरकर
देशबन्धुदास चितरञ्जन चले गये ॥

भासित थी भावना भलाई भव्य भारतकी,
भेदको भुलाया भाव भाया नहीं भोगका ।
जीवन बिताया सब देश-हित-चिन्तनामें,
आया ध्यान मनमें न शारीरिक रोगका ॥
धारे ज्ञान—गौरव गम्भीर धीर त्याग वीर,
योगी था विलक्षण असहयोग-योगका ।
भारत वसुन्धरापै है असहनीय हुआ,
वज्रपात देशबन्धुदासके वियोगका ॥

हिन्दुस्तान महानमें हिन्दूधर्म प्रधान हो ।

उठें आर्य्य-सन्तान, सजग हों समय निहारें
जीवन—धर्म विचार जाति-सेवा व्रत धारें ॥

दम्भ द्वेष दुर्भाव दुष्ट दलको दुतकारें।
कर समाज उपकार देशकी दशा सुधारें॥
अपना करके अन्त्यजोंको,
समुचित अधिकार दें।
पराधीनताका प्रबल,
शिरसे भार उतार दें॥
धारे गौरव धर्म वीर वर बनना चाहें।
जाति प्रेमके सरस भावमें सनना चाहें॥
कुटिल कलह मय क्रूर क्रोधसे तनना चाहें।
उच्च शक्तियोंमें अपनेको गनना चाहें॥
तो आलस्य प्रमादको
छोड़ें साहस शक्ति हो॥
सभी हिन्दुओंके हृदय,
गो-गङ्गाकी भक्ति हो॥
हों उन्नत सद्भाव उदित मङ्गलमय मनमें।
धर्मभावना पूर्ण रहे जाग्रत जन जनमें॥
रक्खें उच्चादर्श अलौकिक वीर भुवनमें।
जाति-प्रेमकी ज्योति जगे जीवट जीवनमें॥
जातीयता-प्रधान हम।
हिन्दू-धर्म विचार लें॥
कर्म्म शर्मके क्यों करें।
उत्तम मर्म विचार लें॥

आगे आकर अमित अन्त्यजोंको अपनावैं।
जातीयता संदेश जातिके युवक सुनावें॥
त्याग भाव अनुराग ओज उरमें उमगावें।
सब कुरीतियोंके विरुद्ध आवाज उठावें॥
जीवनके फल सुख सकल,
पावें गौरव ज्ञान हो।
हिन्दू-धर्मोत्थान हो,
अगर जाति अभिमान हो॥

जाति-दुर्दशा अब न अधिक है देखी जाती।
लीला है लोलुपोंकी न अब लेखी जाती॥
भाईसे क्यों शान करें क्या शेखी जाती।
लोचन-पटल न पाप-प्रथा है पेखी जाती॥
लें सुधार निज प्रवृतिको,
दुःखोंका अवसान हो॥
हिन्दुस्तान महानमें,
हिन्दू-धर्म प्रधान हो॥

हिन्दुओंका ह्रास

हो रहा है हाय हिन्दू-जातिका क्यों ह्रास।
रुक गया है ज्ञान गौरव बल विचार-विकास॥
दुष्ट दैत्य दबा रहे हैं दुःख दें दिन रात।
हो रहे सब ओर हिन्दू-धर्मपर आघात॥

एकता हार्दिक नहीं है हार पर है हार।
किन्तु हिन्दू हैं न करते स्वजातीय-सुधार॥
अन्ध धार्मिक द्वेष वश दिल एक हैं मिलते न,।
जाति-उन्नति—पुष्प हिन्दू-वृक्षमें खिलते न॥
साम्प्रदायिक भाव जीमें बन गये जञ्जाल।
बाधक अखिल हिन्दुत्वके हैं हो रहे विकराल॥
ऐसे समयमें हम अछूतोंको उठावें क्यों न।
प्राचीन हिन्दू-धर्मका गौरव बढ़ावें क्यों न॥
हैं बन रहे बद, बात बिगड़ी है बनावैं क्यों न।
जातीयताकी ज्योति जीवनमें जगावैं क्यों न॥
अन्त्यज हमारे बन्धु भी यह जातिके हैं अङ्ग।
जातीय सेवासे प्रवंचित किये जाते तंग॥
इनके उठानेका उपक्रम है उचित अनुकूल।
इनको पृथक करना समयसे सिद्ध होगी भूल॥
वक्तृत्व-शक्ति विशेषसे होगा न जाति-सुधार।
हमको क्रियात्मक कार्य्य करनेका रहे अधिकार॥
हो संगठन-सद्भाव जो है जाति-उन्नति-मूल।
जीवन बनावैं उच्च हिन्दूधर्मके अनुकूल॥
भय भेद भ्रान्ति भगे, उदय हो प्रेममय भ्रातृत्व।
देगा दिखाई सत्य, सच्ची एकतामें तत्व॥
करना स्वतन्त्र स्वदेशको उद्देश है अनिवार्य्य।
विपरीत जाति समाजके कैसे करेंगे कार्य्य॥

ऐसा अधिक आलस्यका छाया नशा घनघोर।
बंधने न देता जातिमें जातीयताका जोर॥
सन्तान भारतके प्रमुख बाईस कोटि विशाल।
हैं व्यक्ति हिन्दूधर्म अनुयायी यहां इस काल॥
इतने विशाल समूहका होना नितान्त अशक्त।
जातीयताका है पतन दुर्भाग्य करता व्यक्त॥
हिन्दू-समाज कुरीतियोंका अब करे अवसान।
खोवै न व्यर्थ समै कभी सोवै न लम्बी तान॥
बोवै न बेलि विभिन्नताकी एकताको मान।
होवै निरत कर्तव्यमें धर धर्मका ध्रुव ध्यान॥
राणा प्रताप शिवा सरीखे वीरकी सन्तान।
क्यों बन रही कायर समयको जान कर अनजान॥
दृढ़ हो करें सब कार्य है यह जातिका आह्वान।
कर दें उचित है धर्मपर अपनी निछावर जान॥
प्राचीन गौरव ज्ञान जाग्रत हो अपूर्व महान्।
जिससे करें हिन्दू सकल मिल, जातिका उत्थान॥
हो बन्धुवोंको पूर्णतः जातीयताका ध्यान।
जीवन जगानेके लिये जातीयता है जान॥
रक्षा स्वजाति समाजकी कर धर्मका उपकार।
भरिये हृदयमें जाति हित करिये अछूतोद्धार॥
आदर्श बनिये देशके, करके स्वजाति सुधार।
हो हिन्दमें सब ओर हिन्दूधर्मका विस्तार॥

दुःखित अनेकों लाल विधवायें भगायें दुष्ट ।
पथ-भ्रष्ट करके धर्ममें अपने मिलायें दुष्ट ॥
बीसों प्रलोभन दे समय पाके सतायें दुष्ट ।
पारस्परिक ईर्षा कलह-कारण बढ़ायें दुष्ट ।
ऐसे अधम कि समाजमें लाने न देते शान्ति ।
हैं मजहबीपनमें दिवाने छा रहो है भ्रान्ति ॥
हों रूढ़ियां प्राचीन यदि इस समयके विपरीत ।
तो त्यागिये उनको इसीमें नोतिकी है जीत ॥
हो ब्रह्मचर्य्य विवेक बल रखिये उचित आदर्श ।
हो हर्ष मनमें देख करके जातिका उत्कर्ष ॥
गो दुग्ध दधि घृत दें सभीको वै बिचारी हाय ।
हैं कट रही किस भांतिसे गउयें हमारी हाय ॥
जिस रूपमें है हो रहा गोवंशका यह ह्रास ।
उससे नहीं धर्मोन्नतिकी है दिखाती आश ॥
हम भूमिगोचरकी कमीपर हैं न देते ध्यान ।
कैसे कहाते कर्म्मयोगी कृष्णकी सन्तान ॥
अब भी अगर चेतें सुधारें, हों सफल सुखसाज ।
गउयें हमारी कामधेनु समान होवैं आज ॥
मिट जाय परवशता-निराशा हो विवेक विचार ।
करतव्य आवश्यक करें सब मिल समाज सुधार ॥

व्यर्थ जीवन

गुलामीकी जंजीर तोड़ी न मैंने।
छुआछूतकी छूत छोड़ी न मैंने॥
कभी प्रीतिसे प्रीति जोड़ी न मैंने।
फटकने दी लज्जा निगोड़ी न मैंने॥
बराबर हुआ मेरा होना न होना॥
न आने दिया पास कवि कोविदोंको,
ठगाया नहीं ठग लिया है ठगोंको॥
भगाता रहा दूरसे भिखमगोंको।
समझता रहा देवता हाकिमोंको॥
बराबर हुआ मेरा होना न होना॥
असहयोगमें हाथ डाला न मैंने।
वतनका भी अरमां निकाला न मैंने॥
किया मन-भवनमें उजाला न मैंने।
पिया प्रेमका हाय प्याला न मैंने॥
बराबर हुआ मेरा होना न होना॥
फंसाते रहे डालकर लोग फन्दा!
मगर उनके चक्कमेमें आया न बन्दा॥
दिया उम्रभर एक दमड़ी न चन्दा।
रहो जान जबतक रहा स्वार्थ धन्दा॥
बराबर हुआ मेरा होना न होना॥

सत्याग्रह-कार्य्यक्रम

समर-सत्याग्रहमें आ सकें जो।
समस्या देशकी सुलझा सकें जो॥
प्रजामें प्रोत्साहन ला सकें जो।
सुगुण स्वाधीनताके गा सकें जो॥
वही हैं देशके जन त्राणकर्त्ता।
वही हैं दीन भारत-दुःख-हर्त्ता॥
हृदयमें शान्ति संयम धर सकें जो।
कठिन इस कार्य्यक्रमको कर सकें जो॥
प्रमोदित देशके हित मर सकें जो।
महा मन-मोह नदको तर सकें जो॥
उन्हींसे जातिका उपकार होगा।
उन्हींसे देशका उद्धार होगा॥
सदा स्वाधीनताका ध्यान करते।
समय संसारका आह्वान करते॥
उचित ही मात्र भूका मान करते।
निछावर देशपर प्रिय प्रान करते॥
मुदित मैदानमें जो आ गये हैं।
परम चारों पदारथ पा गये हैं॥
जगे हैं जातिमें जो जान डालें।
सदय हो जो अछूतोंको उठालें॥

बुरी है देशकी हालत संभालें।
परस्पर प्रेमकर कर्तव्य पालें॥
हृदय जिनका कपटसे हीन होगा।
उन्हींसे देश वह स्वाधीन होगा॥



अछूतोद्धार

छप्पय

समय-चक्रमें पड़े पतित हैं माने जाते ।
श्वानोंसे भी निम्न सदा हैं जाने जाते ।
अन्त्यज अधम निकृष्ट-रूप अनुमाने जाते ।
देनेको दुख इन्हें ठान बहु ठाने जाते ॥
है कर्तव्य करें सकल, कार्य्य समाज-सुधारका ।
आन्दोलन अति उचित हो, सफल अछूतोद्धारका ॥

परमेश्वर करुणानिधान हों सदय हमारे ।
भागे भय-तम, भाग्य-सूर्य्य हों उदय हमारे ॥
पुलकित हों जातीय प्रेमसे हृदय हमारे ।
आजावें तो निकट अभिलषित विजय हमारे ॥
रखना जीवित जाति है—तो आडम्बर जीर्णता ।
छोड़ें हिन्दू शीघ्र ही सामाजिक संकीर्णता ॥

विभिन्नताका भेद-भाव क्यों बढ़ता जाता ।
रंग शानका, विषम सभोंपर चढ़ता जाता ॥
पण्डित पूज्य समाज मोहमें मढ़ता जाता ॥
अपना वह प्राचीन पाठ हो पढ़ता जाता ।
जाति समाज स्वदेशकी, नहीं दशा है देखता ।
या लखकर लीला अगम अपरम्पार न लेखता ॥

करते नहीं सुधार आप अपने हीमें हम ।
रहते रत दिन-रात ताप तपनेहीमें हम ॥
जीवन देते बिता जाप जपनेहीमें हम ।
अहम्मन्य हैं नहीं आप अपनेहीमें हम ॥
विषम विरोध विकारके हम विशेष भण्डार हैं ।
बाधा देते हैं उन्हें जो रत पर-उपकार हैं ॥
करनेवाले काम न बाते हैं बहु बकते ।
होकर नहीं निराश परिस्थितिका मुंह तकते ॥
करनेमें उद्देश्य पूर्ण वे कभी न थकते ।
साहससे हैं सिद्ध कार्य्य दुस्तर हो सकते ॥
जाग्रत जीवन जातिमें जातीयता प्रधान हो ।
सामाजिक व्यवहारमें सबका स्थान विधान हो ॥

कर्तव्यको पालते हैं ।

भरते नहीं वीर अधीर हो आह स्वजाति दशाको सुधारते हैं ।
नहीं ढारते आंसू अकारणही निज देशपै जीवन वारते हैं ॥
विजै कामना धारे हुये बढ़ते न समैपर सामने हारते हैं ।
वही साहसी वीर हैं 'पद्म' समाजको संकटसे जो उबारते हैं ॥
दुख देखते दूसरोंका दुखते दिलसे दुरभाव निकालते हैं ।
बन वीर विवेकी विचार सुधार विपत्ति-विधानको टालते हैं ॥
करते हैं स्वराजका काज सदैव समाजका साज संभालते हैं ।
सदा हों जो सहायक लक्ष्यकी प्राप्तिमें वे कर्तव्यको पालते हैं ॥

हिन्दू-संगठन कीजिए

भेद-भाव कटु भावनाको छोड़ भाइयोंसे,
भ्रातृ-स्नेह धारके मुदित मन कीजिये ॥
धर्म-ध्येय सुखद समाजकी भलाई हित।
उन्नतिका अपनी पवित्र प्रण कीजिये ॥
रोकर न बैठिये स्वजाति दुर्दशा विलोक।
कार्य्य कर्मक्षेत्र मध्य वीर बन कीजिये ॥
बोकरके बेलि जाति-प्रेमकी समूह सब।
होकरके एक हिन्दू-संगठन कीजिये ॥

आत्मगौरव न भूलें हम।

रद्द कर दें न नव उन्नति-व्यवस्था भली।
बद्द बनके यों मद-झोंकमें न भूलें हम ॥
धर्मका बिगाड़ रूप कर्म शर्मके न करें।
कायरता-कटुता -कलह न कबूलें हम ॥
दुःखित अछूतोंको उठावैं अपनावैं सदा।
प्रेम दरशावैं अभिमानमें न फूलें हम ॥
देश-जाति-धर्मकी भलाईका विचार कर।
अपना अतीत आत्मगौरव न भूलें हम ॥

विविध विषय ।

तुलसी-गुणगान ।

सम्वत् १९८२ की तुलसी-जयन्तीमें, काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयमें भारत-भूषण पं० मदनमोहन मालवीयजीके सभापतित्वमें पठित—

मानवीय प्रकृति-प्रदर्शन प्रभाव-पूर्ण,
करके सुधार भय-भ्रान्तिको भगा गये ॥
आलसी अकर्मण्य आर्य्यजातिमें थे जौन ।
उनमें स्वधर्म अनुराग उमगा गये ॥
खोजा पथ सुपथ सफल कवियोंकी भांति ।
कुपथ पड़ोंको शुभ पथमें लगा गये ॥
होकरके हिन्दी हिन्दुस्थानके हितैषी कवि ।
तुलसी अमर हिन्दू-जातिको जगा गये ॥
चाखे भक्ति-स्वाद भाखे भाषामें विधान ज्ञान ।
राखे रुचिरामकी बड़ाई प्रभुताईमें ॥
प्राकृतिक शोभाकी दिखाई छटा मानसमें ।
काव्य रसपूर्ण गुण शब्द मधुराईमें ॥
शिक्षा सदाचारकी सिखाई सुखदाई सदा ।
प्रीतिकी बढ़ाई बेलि हिन्दू भाई भाईमें ॥
नीतिकी निकाई दृढ़ताई भावनासे भरी ।
जातिकी भलाई तुलसीकी कविताईमें ॥

होनहार बालक

कोमलताके रूप कान्तिमय धारे रंग निराले।
हैं विनोदकी मूर्ति मनोहर बालक भोले भाले॥
इनका सरल स्वभाव मोद प्रद ठुमक ठुमक कर चलना।
है मनको प्रसन्न कर देता हंसना कभी मचलना॥
विविध भांतिके खेल खेलते धरे मोद मन भारी।
भरकर कभी उमंग हृदयमें हैं देते किलकारी॥
ला लाकर मिट्टी मनमानी हैं मूर्तियां बनाते।
उन्हें खेलते हैं आपसमें आनंदित सुख पाते॥
तरह तरहकी क्रीड़ायें कर हैं विनोद बरसाते।
बाल्य चपलताका कौतुक वे कौशलसे दिखलाते॥
वह खेलना कूदना इनका मुग्ध मनोंको करता।
अति उत्तम वात्सल्य भाव है भव्य हृदयमें भरता॥
रत्न देशके यही लाल हैं सुख सर्वस्व हमारे।
लाखों हैं अरमान इन्हींसे हैं आंखोंके तारे॥
होनहार हो पूर्ण करेंगे प्रिय स्वतंत्र अभिलाषा।
भारतकी भावी उन्नतिके हैं बालक यह आशा॥



कान्यकुब्ज युवक-सभा कानपुरमें पठित समस्या—कौन कामकी।

विष भरे ऐंठे हैं बड़ाई विसुवोंमें बंटी,
मोल लिये बैठे क्यों कलह आठोयामकी ॥
बाल-वृद्ध व्याह करें विधवा बनावें बहु,
प्रभुता दिखावें अभिमान धन धामकी ॥
बने हठधर्मी सने स्वार्थमें तने हो रहैं।
करि ठहरौनी सारी जाति बदनामकी ॥
कान्यकुब्ज कुलकी कलङ्क-कालिमा हो दूर।
कोरी ये कुलीनता-कहानी कौन कामकी ॥



प्रेम-खण्ड



पारस पाइगे

भाग उदै प्रिय पद्म, भये नंदनन्दन भाव भरे इत आइगे।
उन्नत सौधसों वै उतरीं देहरी पग धै छविजाल बिछाइगे॥
रेणु लगावत आंखिनमें कछु रूंधे गले हित सिन्धु समाइगे।
पौंरिपै श्री वृषभानु ललीके मनौ पगकी रज पारस पाइगे॥

कराई कान्ह कारेकी

पद्मधर नेमको निबाह प्रिय पूरिबो है।
ह्वैहै गति कैसी गल प्रेम पास पारेकी॥
नैन मूंदि २ कढि जायबो है नन्दद्वार।
देखतै लगैगी चोट मैन मतवारेकी॥
मन रंगि जैवे सों बची न वृज वीथिनमें।
होतही रहैगी हूक हेरि हिय हारेकी॥
मज्जतै कलिन्दजाको कारो करि डारो जल।
कान करि डारेगी कराई कान्ह कारेकी॥

वृजराजको

सीख सुनै प्रिय पद्मजीका, अपने मनके सब कै रही काजको।
रूप-समुद्र-तरङ्गनमें इमि, बोरिही देयगी लाज-जहाजको॥
नैके निहारि कराहि रहो है,कटाक्षको वाण लगो अति आजको।
मूंदि लेरो बृज वीथिनमैं, भरि नैनन हेरै न तू वृजराजको॥

हरे हरे ।

सावनका शुभ मास सुहावन,पावन खेत भरे हैं खरे हरे ।
मंजुल कूल कदंब खरे हरे, हेरिये कैसे परे रसरे हरे ।
'पद्म' प्रफुल्लित काननमें हरे, रत्न जमुर्रदके पटरे हरे ॥
हार हरे हैं शृङ्गार हरे सब झूलत राधिका श्याम हरे हरे ॥

घटानकी

वरषा वहार या शृङ्गारका है सार नव,
आनँद अपार या छटा है वनितानकी ।
मोर करें शोर या मदन दुंदुभी सी बजै,
सुखित संयोगी पाय रति प्रिय प्रानकी ॥
दामिनीकी दुतिया नवेली नायकाकी छवि,
आभा अवलोकिये अनोखी आसमानकी ।
घन श्याम घूमते हैं कामके समान याकि,
सुखमा सुहाई सुखदाई है घटानकी ॥

बरसाने लगे

झपे झूमत मत्त मतङ्गन लौं, दुति दामिनकी दरशाने लगे ।
चहुं शीतल मन्द सुगन्धन सानि, समीरनको सरसाने लगे ॥
प्रिय 'पद्म' संयोगिनी संगम साजि, पियूष मनो बरसाने लगे ।
बरसानेमें साने सबै सुखसे, फिर ये बदरा बरसाने लगे ॥

घनश्यामकी

छाई छबि पावसकी मंजुमन भाई महा,
पाई प्रेमपाती प्राणपति सुखधामकी।
हर्षित वदन वेश फूली फिरे तन्मय,
हरती हृदय है गयन्द-गति वामकी॥
आनन प्रकाशमान दिव्य द्युति 'पद्म धर'
सुन्दरी सलोनी मानो कोटि कलाकामकी।
धाई धाई फिरत बधाई देत चारों ओर।
आज सुखदाई है अवाई घनश्यामकी॥

बावरीसी बृजचन्द विलोकि,
चकोरनीकी दुतिको धरती रहैं।
त्यों प्रिय पद्म सदा उर मांहि,
सनेहके सागरको भरती रहैं।
कैसी चितौन चितैके गये,
तबसे झरनासी नितै झरती रहैं।
लाखन भांतिनकी अभिलाषैं,
सखी दुखिया अखियां करती रहैं।

वसन्त वर्णन

पद्मधर कोकिल कलोलै लगे काननमें,
चन्द्र त्यों उद्दीपनके ध्वज धरने लगो ॥
क्वैलियाकी कूकन कटारी सी हनन लागी,
भौन भौन भौंर भारी भीर भरने लगो ॥
पारि दीन्हों पावक पलासनपै पुन्ज मानो,
विरही विचारनको देखि दरने लगो ॥
वधिकसे अधिक वसन्त बन बागनमें,
वापुरे रसालनको वौरे करने लगो ॥
कड़ी कोकिलकी ध्वनिको सुनि कान,
कुठारकी वान अचूकै लगी।
तिमि शीतल मंद सुगन्ध समीर,
अली सुमनावलि झूकै लगी ॥
प्रिय पद्मजो पेखो पलासनपै मनौ,
पावककी छवि छूकै लगो।
ऋतुराजको मैनको सैन लै आगम,
क्वैलिया कातिली कूकै लगी।
काहु अचार सचार तहांपै,
जहां प्रिय प्रेम विचारको जोर है।
जीवत ही जो मरो सो फिरै॥

तजि मित्र न ताको कहूंपर ठौर है।
पूरी लगी ज्यहिके सोई जानत।
कातिली जैसो कटाक्षकी कोर है॥
भामिनी भोगसों भोग न दूसरो।
प्रेमके रोग सों रोग न और है॥
दुर्लभ कौन पदारथ है महामुक्तिके लाभको लै सकते हैं।
रूप-समुद्र-तरङ्गनमें प्रिय पद्म विनोदको बै सकते हैं॥
सम्पदा तीनहूं लोकनकी त्रणके सम देखते दै सकते हैं।
नेमो न ईश्वरसे ह्व रहो परै प्रेमो सबै कछु कै सकते हैं॥



प्रेम-पचीसी



सवैया

(१)

तुम जीवनके सर्वस्व बने रहता दिनरात है ध्यान तुम्हारा ।
चहता चित चारु निहारा करें मुखमण्डल रूपकी खान तुम्हारा ॥
उरमें मिलनेके विचार भरे करते हैं सदा गुन-गान तुम्हारा ।
यही कामना देखा करें ये सदैव ही आनन चन्द्र समान तुम्हारा ॥

(२)

पद-पद्मका दास करो अपने, अपनेको कभी न निराश करो ।
भली भावना भावुकके मनकी सब पूरी सदा अभिलाष करो ॥
नहीं नेम निबाहनेका कुछ कारण पावन प्रेम प्रकाश करो ।
वनके प्रिय मूर्ति विनोद भरे मन-मन्दिर मध्य निवास करो ॥

(३)

गति या रति, जो कुछ है तुममें मति मेरी सनेह सनी रहती है ।
मिलके मन एक हों, दो तो परस्पर प्रीति प्रतीति घनी रहती है ॥
फिर भी किस कारण जान कमानसी भौंह तुम्हारी तनी रहती है ।
उरमें अवलोकनेकी अभिलाष उमङ्ग विशेष बनी रहती है ॥

(४)

करना उन्हें दूर नहीं चहिये रहते दिन रात जो नेरे बने ।
मन कैसे हटाये नहीं हटता हम रूपके भक्त हैं तेरे बने ॥
बनती नहीं है कहते छवि उत्तम मञ्जु मनोहर हेरे बने ।
मुख-चन्द विलोकनेको चित चाहक चारु चकोरसे चेरे बने ॥

(५)

मुंह मोड़के छोड़के साथ कभी यह तोड़ सनेहका ताग न दो ।
मिलनेका सहारा लगा है जिसे उससे कर योंही विराग न दो ॥
जिसने किया अर्पण जीवन है क्यों उसे निज मोदमें भाग न दो ।
उरके अरमान निकालने दो अनुरागके बागमें आग न दो ॥

(६)

कभी होगा संयोग वियोग विचारकी भावना भ्रान्त भगी रहती है।
तव रूप छटाको निहारनेको मति प्रीतिमें मेरी पगी रहती है ॥
मुद मङ्गलमय मन-मन्दिरमें प्रिय प्रेमकी ज्योति जगी रहती है ।
मिलनेको सदा उरमें अभिलाष निरंतर चारु लगी रहती है ॥

(७)

अपनाया नहीं अपनेको कहो रहा तो फिर प्रेमका नात ही क्या ।
तव रूप मनोहर है उरमें बसा औरकी कोई बिसात ही क्या ॥
मन टूट न जाये संभालो इसे यह कोमल है अवकात ही क्या ।
पल भी विना यादके बीते नहीं फिर है दिन-रातकी बात ही क्या ॥

(८)

गुण रूप मनोहर सुन्दरता मृदुता सुखमाको सराहते हैं।
तव रूप सुधा-सरितामें सदा मन-मीन बने अवगाहते हैं॥
प्रिय नेक निगाहकी कामना है हम नेहका नाता निबाहते हैं।
दिलकी कलीके खिलनेके लिये मिलनेकी कृपा बस चाहते हैं॥

(९)

अभिलाषित हैं हम क्यों न परस्पर जीवनसूत्रको जोड़ो प्रिये।
तव रूपकी वारुणी पीके प्रमत्त बने हैं कृपा हो न छोड़ो प्रिये॥
मिलना ही मुनासिब है तुमको मनमोह न यों मुंह मोड़ो प्रिये।
बँधनेमें विशेष विनोद मिले यह बन्धन प्रेम न तोड़ो प्रिये॥

(१०)

तुम घातपै घात करो कितने हमें बात है कोई नहीं झँखनेकी।
चित चंचल मानता ही है नहीं इक चाह है रूप-सुधा चखनेकी॥
अभिलाष उमंग हुई अति ही तुमको उर अन्तरमें रखनेकी।
बने व्याकुल बाट विलोक रहे लगी लालसा लोचनोंको लखनेकी॥

(११)

मन

मन धारे हुये है उमंग बड़ी लख रावरेका प्रियरूप उजाला।
छवि जाल हीमें फँसके बसके बना मस्त है पीकर प्रेमका प्याला॥
नहीं मानता मेरे मनाये हुये इसका कुछ हो गया रङ्ग निराला।
रत माधुरी पै महा मुग्ध हुआ अपनेमें नहीं मन है मतवाला॥

(१२)

पहचानता सुन्दरता सुखमा प्रिय प्रेम रहस्यको जानता है।
अपनेसे विशेष विचारे हुये तुमको उर-अन्तर आनता है॥
मिलनेको सनेहके सिन्धु होमें मिलनेको महा हठ ठानता है।
समझायें सुझायें इसे कितना मन मेरे मनाये न मानता है॥

(१३)

उसकी छवि

छवि छाती बढ़ाती उमंग महा मन भाती किसे नहीं रूप लुनाई।
नव यौवनकी प्रभा पूर्ण प्रकाशित है प्रिय आननमें सुखदाई॥
सब सुन्दर अङ्ग मनोहर मानो मनोज हीकी दुति देती दिखाई।
महिमा किसकी अब कैसे कहें सुखमा उसकी उरमें है समाई॥

(१४)

उसपै यह अर्पन जीवन है तन औ मन है प्रिय प्रान उसीका।
यदि कामना कोई रही उरमें मिलनेका रहा अरमान उसीका॥
मनमानके चन्द समान छटा करते हैं सदा गुन गान उसीका।
किसका अब रूप बखान करें रहता दिन रात है ध्यान उसीका॥

(१५)

उसकी वह भेंट हमारे लिये है अपूर्व बड़ी सुखदाई हुई।
उसकी वह शील स्वभावकी भावना है मनको अति भाई हुई॥
वह कारीगरी है मनोहर चारु कला विधिकी है बनाई हुई।
अनुराग उमंग भरे उरमें उसकी छवि-श्री है समाई हुई॥

(१६)

उसका ही विनोद विलास रहे अभिलाष हो पूरी सभी मनकी ।
उसे देखा करें दिन रैन सदा यही कामना है इस जीवनकी ॥
उसके ही सनेह संयोगके स्वादमें भूल गई सुधि है तनकी ।
उसके छवि-जालमें चित्त फंसा, लगी लालसा है दुति दर्शनकी ।

(१७)

मिलनेकी महा उत्कण्ठा बढ़ी वह ज्योति प्रकाश है प्रेम-प्रभाकी ।
उसकी वह आनन माधुरी सुन्दर स्रोत सुधाकी कला सुखमाकी
हृदय हर्षित हेरके हो गया है उसकी सुमनोहर रूपकी झांकी ।
मुद दायक मोहनी मूर्ति महा मनमें है बसी उसकी छवि बांकी ॥

(१८)

छहरा रही है छटा क्षेम मई उसकी छवि प्रेम प्रकाश किये है ।
उसके मिलनेके लिये चितचञ्चल आकुल हो अभिलाष किये है ॥
उसे सार श्रृंगारका माने हुये उससे ही विनोद विलास किये है ।
उसकी मन मोहनी मूर्ति महा मन-मंदिर मध्य निवास किये है ॥

(१६)

मनमें कुछ भेदका भाव न है उसको प्रिय प्रान समान बनाया ।
अनुराग दिनोदिन ऐसा बढ़ा उसे जीवनसे भी प्रधान बनाया ॥
गुनगान किया अभिलाषित हो,उसे प्रेमके लक्ष्यका ध्यान बनाया ।
उसके मिलनेका विचार किया उसको अपना अरमान बनाया ॥

(२०)

उसके उस शील स्वभाव सनेहमें पूर्ण है चित्त गया सन मेरा।
उसके उस योवन रूपको सादर है ये समर्पित जीवन मेरा॥
उस मञ्जु मनोहर रूपही पै ये निछावर हो गया है तन मेरा।
उसका मुख मण्डल देखते ही यह हाथसे जाता रहा मन मेरा॥

(२१)

वस कामके ऐसे हुये वसुयाम नहीं परिणाम विचार किया।
उर धार उमंगका भाव महा उस मोहनी मूर्तिको प्यार किया॥
अधिकाधिक और बढ़ी अभिलाष प्रमोदित प्रेम प्रसार किया।
मन चञ्चल चारु चुरा करके उसने तनपै अधिकार किया॥

(२२)

वह रूपकी राशि निहारनेको मनका यह मानता मैन नहीं।
उसके मिलनेके विचार हीमें गिनते कुछ भी दिन रैन नहीं॥
हुये ऐसे वियोगमें व्याकुलसे मुखसे हैं निकालते वैन नहीं।
उत्कण्ठित हैं द्युति देखनेको पड़ती उसके विना चैन नहीं॥

(२३)

उसके उस रूपके मोहमें मग्न हो भाव भरा मैं ठगा हुवा हूं।
उसके मिलनेकी सुलालसाहीमें सदा दिन रात लगा हुवा हूं॥
उसके प्रिय प्रेममें पूर्ण प्रमोदसे प्रेमी बना मैं पगा हुवा हूं।
रुचि ऐसी हुई कुछ है मनकी उसके रङ्गमेंही रंगा हुवा हूं॥

(२४)

नहीं नेम निबाह सके अपना प्रिय प्रेमकी राहमें आना हुवा ।
उत्कंठित हो उरमें अति हो उससे अनुराग बढ़ाना हुवा ॥
सब इच्छित प्राप्त पदार्थ ही हैं उसका यदि संभव पाना हुवा ।
मिलनेकी बड़ी लगी लालसा है उसको दिल देख दिवाना हुवा ॥

(२५)

उस रूपकी राशिपै मुग्ध हुवा उसके रंगमें शराबोर हूं मैं ।
उससे कुछ लाग है ऐसी लगी वह प्रेम पतंग तो डोर हूं मैं ॥
तन, औ मन, जीवन है उसका, वह है घन, तो बना मोर हूं मैं
उसकी सदा चित्तमें चाह रहे वह चन्द्रमा है तो चकोर हूं मैं ॥

❀ शुभमस्तु ❀

